अतिमानवता के पथ पर

"अथवा, हमें मिलेगी तब, जब
अन्य सभी कुछ निष्फल होगा,
अपने ही अन्तर में गूहित
पूर्ण रूपान्तरण की कुंजी।"

—श्रीअरविन्द (सावित्री—पृ. २५६)

भूमिका

रहस्य सरल-सहज है।

क्योंकि 'सत्य' सरल है। जगत् में यह सबसे सरल चीज है, इसीलिए हम इसे नहीं देखते। जगत् में 'एकमेव' सत्-तत्त्व है, दो नहीं, जैसा कि आधुनिक भौतिकशास्त्री और गणितज्ञों ने समझना शुरू किया है, और जिसे कि एक शिशु जानता है, जब वह सूर्यालोकित सागर-तट पर लहरों को देखकर मुस्कुराता है; जिस तट पर लहरों का वही फेनिल प्रवाह कालचक्र के आरम्भ से बहता चला आ रहा है; जो प्राचीन स्मृतियों के गर्भ से उठती जीवन के सुखद-दुःखद दिनों की लयबद्ध गतियों की याद दिलाता हुआ उन्हें एक कथासूत्र में पिरोता चला जाता है। यह इतना पुरातन लगता है मानों यह एक नित्य सतत उपस्थिति है जो अपनी विशालता में इतनी व्यापक है कि सामुद्रिक पक्षी की उड़ानों को भी अपने में समेटे हुए है। और, उस सरल-से, क्षणभर को चमकते बिन्दु में, जो उफनती फेनिल लहर पर चमका था, सब कुछ—सारे युगों और सभी जीवात्माओं का कुल योग—समाहित है। किन्तु हमने उस बिन्दु को, उस मुस्कान को, उस संगीतमय क्षण को खो दिया है। अतः हमने उस 'एकत्व' को पुनः प्राप्त करने के लिए जोड़ बैठाने की कोशिश की है। १+१+१... अपने कम्प्यूटरों की तरह मानों सभी सम्भव दिशाओं से प्राप्त होने वाले समस्त ज्ञान को जोड़ने से हमें वह सही स्वर प्राप्त हो जायेगा, वह एक स्वर जो सारे गीतों को बनाता है और समस्त जगत् और उस विस्मृत शिशु के हृदय को मुग्ध करता है। हमने हर 'पॉकेट-बुक' के रूप में उस 'सरलता' को बनाने की कोशिश की है, लेकिन हमने अपने जीवन को सरल बनाने के इन चतुराई-भरे बटनों को जितना बढ़ा डाला उतना ही वह पक्षी हमसे दूर उड़ता चला गया, वह मुस्कान, वह चमकता फेनिल जल भी हमारे समीकरणों से प्रदूषित हो गया है। हम पूर्ण निश्चय से अभी तक यह भी नहीं जानते कि हमारा शरीर वास्तव में हमारा है—उस सुन्दर 'यन्त्र' ने सब समाप्त कर डाला।

तथापि, वह एकमेव 'सद्वस्तु' ही एकमेव 'शक्ति' भी है। क्योंकि, जो एक बिन्दु में चमकता है, वही अन्य सभी बिन्दुओं में चमकता है। एक बार यह समझ में आ गया तो बाकी सब समझ में आ जायेगा; जगत् में एक ही 'शक्ति' है, दो नहीं। एक नन्हा बच्चा भी यह समझता है कि, वह राजा है, वह शक्तिशाली, अजेय है। परन्तु बच्चा बड़ा होता है, वह भूल जाता है। और, मनुष्य भी आगे बढ़े हैं, देश और सभ्यताएँ आगे बढ़ी हैं, प्रत्येक ने अपने तरीके से 'महान् रहस्य' को—उस सरल रहस्य को—युद्ध और विजय के द्वारा, ध्यान अथवा चमत्कार के द्वारा, सुन्दरता, धर्म अथवा विज्ञान के द्वारा खोजने का प्रयास किया है। यद्यपि, सच में हम नहीं जानते कि इनमें से कौन सबसे आगे है : ऍक्रोपोलिस का भवननिर्माता, चमत्कार करने वाला थीबन, अन्तरिक्षयात्री केप कैनेडी अथवा सिस्टॅर्शियन संन्यासी; कारण, एक ने जीवन को समझने के लिए जीवन को त्यागा, दूसरे ने इसे बिना समझे इसका आलिंगन किया, अन्य ने सौन्दर्य की एक छाप अंकित कर दी, तो और एक ने अनन्त चिरनील गगन में एक श्वेत रेखा खींच कर छोड़ दी। इस सूची में हमारा नाम केवल अन्तिम है, इतनी सी बात है। और, हम अब तक अपना चमत्कार नहीं ढूँढ़ सके हैं। वह बिन्दु, आज भी जगत् के विस्तृत तट पर विद्यमान है; जो भी उसे पकड़ेगा उसके लिए वह अब भी चमकता

है, ठीक वैसे ही जैसे हमारे मानव बनने से पूर्व वह तारों की छाँव में चमकता था।

तथापि कुछ अन्य लोगों ने उस रहस्य को छुआ है। शायद यूनानी जानते थे, मिस्र के लोग जानते थे और निश्चित रूप से वैदिक काल के भारतीय ऋषि उसे जानते थे। किन्तु रहस्य किसी सुन्दर वृक्ष पर खिलनेवाले फूलों की तरह होते हैं; उनकी अपनी खिलने की ऋतु होती है, बाहर से दिखाई न पड़ने वाली, अन्दर ही बढ़ने की प्रक्रिया होती है और फिर अचानक फूल खिल उठते हैं। हर चीज का एक "समय" होता है। हमसे बहुत ऊपर, आकाश में नक्षत्रों के योग का बनना, जलकागा पक्षी का फेन से भरी चट्टान तक रास्ता बनाना, और फेन के बनने का भी एक समय होता है—लहर का ऊपर उठना और उस पर क्षण-भर के लिए फेन बनना; हरेक चीज़ की गति में एक ही प्रक्रिया होती है। इसी प्रकार मनुष्यों की भी गति होती है। यह एक रहस्य है कि ज्ञान और शक्ति का अपना एक रचनात्मक समय होता है, एक छोटी-सी कोषिका जो अन्य कोषिकाओं की अपेक्षा अधिक विकसित हो जाये, इस ज्ञान को मूर्त रूप नहीं दे सकती, अर्थात् वह जगत् को तब तक नहीं बदल सकती, विशाल वृक्ष पर फूलों के खिलने की ऋतु को तब तक जल्दी नहीं ला सकती, जब तक कि सारा विकसनशील क्षेत्र तैयार न हो जाये।

किन्तु अब, समय आ गया है।

आ गया है वह समय! यह अब सारी धरती पर प्रस्फुटित हो रहा है, चाहे वह अनदेखा पुष्प अभी एक पीप भरे फोड़े जैसा ही दीख रहा हो : यथा, कोलकाता में गाँधी की मूर्ति को विद्यार्थियों द्वारा तोड़ा जाना, प्राचीन देव-आस्थाओं का टूटना; बुद्धि और तत्त्वमीमांसा से पोषित मन विघटन के लिए पुकार रहे हैं और अपनी ही कैद को तोड़ने के लिए विचित्र आदिम एवं बर्बर जाति को बुला रहे हैं, ठीक उसी तरह जैसे प्राचीन रोमनों ने किया था; कुछ अन्य लोग रासायनिक स्वर्गों को आमन्त्रित कर रहे हैं—आज की अवस्था से कोई भी दूसरी अवस्था बेहतर है! और, धरती माँ अपनी इन असंख्य टूट-फूट और विदीर्ण करनेवाली चोटों की पीड़ा से, अपने शरीर की असंख्य कोषिकाओं के रूपान्तरण की पीड़ा से हाँफ रही है, कराह रही है। हमारे युग की अशुभ-अमंगल कहलाने वाली परिस्थितियाँ छद्मरूप में एक नवजन्म है, जिसे हम सँभालना नहीं जानते। हम लोग नूतन क्रमविकास-प्रक्रिया के संकटकाल का ठीक उसी तरह सामना कर रहे हैं जैसे महावानर-जाति ने प्रथम मानवजाति में उत्क्रमण करते समय किया होगा।

किन्तु, क्योंकि पार्थिव शरीर एक है अतः उसका निदान भी एक है, वैसे ही जैसे 'सत्य' एक है। और, एक रूपान्तरित बिन्दु अन्य सभी बिन्दुओं को रूपान्तरित करेगा। वह बिन्दु हमारे नियम-कानूनों के सुधार में, हमारे शासनतन्त्र व पद्धतियों में अथवा विज्ञानों में, हमारे धर्मों में, विचारधाराओं अथवा नाना "वादों" में नहीं मिलेगा—ये सब पुरानी मशीनरी के हिस्से हैं; इसका एक भी पेंच कसने, जोड़ने अथवा कहीं सुधारने की जरूरत नहीं है : हम 'अतिवाद' में घुट रहे हैं। इसके अलावा उस बिन्दु का हमारी बुद्धि से कुछ लेना-देना नहीं—जिसने (बुद्धि ने) इस मशीन को शुरू में सफल बनाया था—न ही 'मनुष्य' को बेहतर बनाने में है, जो केवल उसकी कमियों और अतीत की महानताओं को ही भव्यतर बनाना होगा। श्रीअरविन्द ने कहा है—"मानव की अपूर्णता प्रकृति का अन्तिम वचन नहीं है, किन्तु, उसकी परिपूर्णता भी 'आत्मा' का अन्तिम शिखर नहीं है।"[२] वास्तव में यह बिन्दु हमारी बुद्धि की पकड़ से परे भविष्य में विद्यमान है, लेकिन सत्ता की गहराई में यह उसी तरह विकसित होता जा रहा है जैसे पलाश के सारे पत्ते झड़ जाने पर उसके फूल खिल उठते हैं।

लेकिन, भविष्य के द्वार की भी एक चाबी होती है, बशर्ते कि हम **असली** चीज़ की गहराई में जायें। किन्तु जिसे हम अपने मानवीय मापदण्डों के अनुसार सुन्दर, उचित और श्रेय मानते हैं उसके अलावा वह गहराई और कहाँ हो सकती है? किसी एक दिन प्रथम सरीसृप-प्राणी ने जल से निकलकर उड़ान भरने की लालसा की, प्रथम नरवानर ने जंगल से बाहर निकलकर दुनिया पर आश्चर्यभरी नयी दृष्टि डाली : दोनों

[२] CWSA-22: 793

को एक-सी ही अदम्य दुर्निवार लालसा एक अन्य अवस्था के लिए सोचने को आकुल कर रही थी। और, सम्भवतः रूपान्तरण की सारी शक्ति उस एक सरल दृष्टिपात में पहले से ही निहित थी जो किसी **अन्य रूप के प्रति** उठी, मानों उस दृष्टि में, उस आकुलता में, उस अज्ञात आतुर पुकार के केन्द्रबिन्दु में भविष्यत् के महत् प्रवाह के द्वार को खोलने की शक्ति निहित थी।

वास्तव में, उस केन्द्रबिन्दु में सब निहित है, वह सर्वशक्तिमान् है; वह अगण्यरूप से अद्वितीय सौर 'आत्मतत्त्व' का स्फुलिंग है जो प्रत्येक व्यक्ति और हरेक वस्तु के हृदय में चमकता है, जो देश के हर कण और काल के हर क्षण में चमकता है, फेन के हर कतरे में चमकता है, जो पलभर की झलक में दिखा था, वह निरन्तर अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है।

भविष्य उनका होता है जो स्वयं को भविष्य के लिए निःसंकोच, पूर्णतया दे देते हैं।

और, हम यह स्वीकार करते हैं कि एक ऐसा भविष्य है जो मन के बनाये सारे इलेक्ट्रॉनिक सुख-स्वर्गों से कहीं ज्यादा सुन्दर और भव्य है : मनुष्य अन्तिम चरण नहीं है, जैसे आर्किओप्टेरिक्स (एक विशाल डायनासॉर) सरीसृपजाति के प्राणी का सबसे उत्कृष्ट रूप होने पर भी अन्तिम चरण नहीं था—कैसे कोई भी चीज़ क्रमविकास की लहर की अन्तिम पराकाष्ठा हो सकती है? यह हम स्वयं में स्पष्टरूप से देखते हैं : हमें लगता है कि हम एक से बढ़कर एक यन्त्रों का आविष्कार करते जा रहे हैं, मानव की सीमाओं का निरन्तर विस्तार करते जा रहे हैं, बृहस्पति और शुक्र ग्रहों की ओर बढ़ रहे हैं। किन्तु यह केवल आभास है, जो अधिकाधिक भ्रमात्मक और उत्पीड़क है, हम किसी चीज़ का विस्तार नहीं कर रहे हैं : हम केवल ब्रह्माण्ड के दूसरे छोर पर एक दयनीय तुच्छ प्राणी को भेजते हैं जो स्वयं अपने जैसों को सँभालना तक नहीं जानता, अथवा, उसे पता भी नहीं कि उसकी अपनी गुहा में ड्रैगन बसता है या कुनमुनाता हुआ कोई बच्चा। हम प्रगति करते ही नहीं, हम मन के एक विशाल गुब्बारे को असाधारण रूप से फुलाते चले जाते हैं जो चाहे जब हमारे मुँह पर ही फट सकता है। हमने मनुष्य को बेहतर नहीं बनाया, हमने उसे केवल विशाल रूप दे दिया है। और, इससे भिन्न कुछ हो भी नहीं सकता था। गलती हमारे कुछ गुणों के अभाव या बुद्धि की क्षमताओं में नहीं है, कारण, इन गुणों या क्षमताओं को चरम सीमा तक ले जाने पर भी इनसे एक अतिसन्त या अतियन्त्र (सुपरमशीन)—विशाल दैत्य ही पैदा हो पाते। अपनी माँद में बैठा एक सन्त प्रकृति का सरीसृप जन्तु क्रमविकास का, किसी सन्त संन्यासी की अपेक्षा, अधिक उच्च शिखर नहीं बन सकता। बल्कि, हम ये सब बातें भूल जायें। सच्चाई यह है कि किसी मानव अथवा किसी भी चीज़ का चरमोत्कर्ष उस व्यक्ति या उस वस्तु में उसी की एक उच्चतर श्रेणी की पूर्णता भर देने में नहीं है; वह है उसका "किसी अन्य रूप में" ऊपर उठना जो उसके पहले रूप में नहीं था और जैसा बनने की वह अभीप्सा करता था। यही है क्रमविकास का विधान। मनुष्य अन्तिम चरण नहीं है; मनुष्य एक "संक्रमणशील प्राणी"[३] है, यह बात श्रीअरविन्द ने बहुत पहले ही कह दी थी। वह अतिमानवता की ओर उसी तरह अग्रसर हो रहा है जैसे आम के बीज में उसकी उच्चतम शाखा की सबसे छोटी टहनी सन्निहित होती है। अतएव हमारा एकमात्र सच्चा कार्य, हमारी एकमात्र समस्या, एकमात्र प्रश्न, जिसका उत्तर ढूँढ़ने का प्रयास युग-युग से चल रहा है, और जो समस्या हमारे पृथ्वीरूपी महापोत के अंग-अंग को चीर कर अलग करे डाल रही है, वह है कि यह संक्रमण कैसे करें?

नीत्शे ने भी यह कहा था। किन्तु उसका अतिमानव वर्तमान मानव-रूप का ही बृहदीकरण था; हमने देखा है कि जब उसने यूरोप को कुचला तो क्या कर दिया। वह क्रमविकासात्मक प्रगति नहीं थी, वह केवल मानव अहंकार का सुनहरे-भूरे पशु की बर्बरता में लौट जाना था। हमें "सुपर मैन" (शक्तिमान् मानव) नहीं चाहिये, बल्कि कुछ और चाहिये जो अब मनुष्य के आन्तर मन में मन्द-मन्द फुसफुसाने लगा है तथा जो वर्तमान मानव से उतना ही भिन्न है जितनी संगीतकार बाक़ की संगीतरचनाएँ आदिमानव की घुरघुराहटों से

[३] CWSA-12: 157

भिन्न हैं। और, सत्य यह है कि बाक़ की संगीतरचनाएँ भी बहुत फीकी लगने लगती हैं जब हमारी अन्तः-श्रवण-शक्ति भविष्य की स्वरसंगतियों को सुनने के लिए उन्मीलित होने लगती है।

इस उन्मीलन की, इस नयी प्रगति की हम उस प्रकाश में परीक्षा करेंगे जिसे हमने श्रीअरविन्द तथा उनके कार्य को आगे बढ़ाने वाली श्रीमाँ से प्राप्त किया है, जो इस रूपान्तरण के कार्य की जीवन्त क्रिया-प्रणाली स्वरूप हैं, और जिसके फलस्वरूप हम स्वयं अपने क्रमविकास के कार्य को—प्रयोगात्मक रूपान्तरण के कार्य को—रीतिबद्ध तरीके से संचालित कर सकें, इसकी सही पकड़ हमें मिल सके। ठीक उसी प्रकार जैसे कुछ लोग "टैस्ट्यूब"-गर्भ तैयार करने की कोशिश करते हैं, हालाँकि उसमें उन्हें अपने दैत्यरूप की ही प्रतिध्वनि सुनायी पड़ सकती है।

जीवन का रहस्य जीवन में नहीं है, न ही मानव का रहस्य मानव में, उसी तरह जैसे श्रीअरविन्द ने कहा था—"कमल का रहस्य उस कीचड़ में है जिसमें से वह विकसित होता है।" तथापि उस कीचड़ और सूर्य की एक किरण ने मिलकर एक उच्चतर कोटि के सामञ्जस्य की सृष्टि की है। हमें परिवर्तन के इस स्थान को, रूपान्तरण के इस बिन्दु को खोजना होगा। शायद तभी हम यह पुनः जान पायेंगे कि, सागरतट पर वह शान्त बालक एकाग्र होकर तूफानी फेन के एक अंश में किस चीज़ को, ध्यान से देख रहा था, क्या है वह परम संगीत जो लोकों को चक्राकार गति में घुमा रहा है, और क्या है वह 'अद्‌भुत चमत्कार' जो अपने प्रकट होने के काल की प्रतीक्षा कर रहा था।

और, जो मानवीय क्षमता के लिए असम्भव प्रतीत हो रहा था वह बाल-क्रीडा बन जायेगा।